I J C R M

International Journal of Contemporary Research In Multidisciplinary

Research Article

ग्रामीण महिलाओं में प्रसवोत्तर अवसाद: एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

आयुषी गुप्ता [1*], आरती कुमारी [2]

[1] Research Scholar, Department of Sociology, Banasthali Vidyapith, Rajasthan, India

[2] Assistant Professor, Department of Sociology, Banasthali Vidyapith, Rajasthan, India

Corresponding Author: * आयुषी गुप्ता

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.21336552

सारांश

प्रसवोत्तर अवसाद मातृ मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित एक गंभीर एवं बहुआयामी समस्या है, जो केवल जैविक अथवा मनोवैज्ञानिक कारणों तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा पारिवारिक परिस्थितियों से भी गहराई से प्रभावित होती है। प्रस्तुत अध्ययन में प्रसवोत्तर अवसाद का विश्लेषण समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से किया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि महिलाओं का मानसिक स्वास्थ्य सामाजिक संरचना, लैंगिक संबंधों, पारिवारिक सहयोग, आर्थिक स्थिति तथा सांस्कृतिक मान्यताओं के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। अध्ययन में संरचनात्मक-क्रियात्मक सिद्धांत, नारीवादी, जुड़ाव सिद्धांत तथा लेबलिंग सिद्धांत के माध्यम से प्रसवोत्तर अवसाद की समाजशास्त्रीय व्याख्या प्रस्तुत की गई है। संरचनात्मक-क्रियात्मक दृष्टिकोण यह स्पष्ट करता है कि परिवार एवं अन्य सामाजिक संस्थाओं द्वारा पर्याप्त भावनात्मक, सामाजिक तथा आर्थिक सहयोग न मिलने पर मातृ मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित होता है और सामाजिक संतुलन में व्यवधान उत्पन्न होता है। नारीवादी एवं जेंडर सिद्धांत यह दर्शाते हैं कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था, लैंगिक असमानता, घरेलू कार्यों का असमान वितरण, आर्थिक निर्भरता तथा महिलाओं की सीमित निर्णय क्षमता प्रसवोत्तर अवसाद की संभावना को बढ़ाती है। जुड़ाव सिद्धांत यह प्रतिपादित करता है कि मातृ मानसिक स्वास्थ्य का सीधा प्रभाव माँ-शिशु संबंधों तथा शिशु के भावनात्मक एवं सामाजिक विकास पर पड़ता है। वहीं, लेबलिंग सिद्धांत यह स्पष्ट करता है कि मानसिक स्वास्थ्य के प्रति सामाजिक कलंक एवं नकारात्मक सामाजिक धारणाएँ महिलाओं को सहायता प्राप्त करने से रोकती हैं, जिससे उनकी मानसिक स्थिति और अधिक जटिल हो जाती है।अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि प्रसवोत्तर अवसाद को केवल चिकित्सकीय समस्या के रूप में नहीं देखा जा सकता, बल्कि यह सामाजिक संरचना, लैंगिक असमानता, आर्थिक विषमता, पारिवारिक संबंधों तथा सामाजिक समर्थन की उपलब्धता से निर्मित एक व्यापक सामाजिक समस्या है। विशेष रूप से ग्रामीण भारत में घरेलू हिंसा, पुत्र वरीयता, सीमित स्वास्थ्य सेवाएँ, सामाजिक असमानताएँ तथा महिलाओं की आर्थिक निर्भरता इस समस्या को और अधिक गंभीर बनाती हैं। अतः मातृ मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ बनाने के लिए बहुआयामी हस्तक्षेप आवश्यक हैं, जिनमें समय पर मानसिक स्वास्थ्य जाँच, परामर्श सेवाओं का विस्तार, परिवार एवं समुदाय का सक्रिय सहयोग, महिलाओं का सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण, लैंगिक समानता को बढ़ावा तथा मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रमों में मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं का समावेश प्रमुख हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण प्रसवोत्तर अवसाद को व्यापक सामाजिक संदर्भ में समझने तथा प्रभावी नीतियों एवं हस्तक्षेपों के निर्माण हेतु एक सशक्त वैचारिक आधार प्रदान करता है। यह अध्ययन चिकित्सा समाजशास्त्र, महिला अध्ययन, ग्रामीण समाजशास्त्र तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान देने की क्षमता रखता है।

Manuscript Information

- **ISSN No:** 2583-7397
- **Received:** 04-01-2025
- **Accepted:** 26-02-2025
- **Published:** 28-02-2025
- **IJCRM:**4(1); 2025: 316-321
- **©2025, All Rights Reserved**
- **Plagiarism Checked:** Yes
- **Peer Review Process:** Yes

How to Cite this Article

प्रो. आयुषी गुप्ता, आरती कुमारी. ग्रामीण महिलाओं में प्रसवोत्तर अवसाद: एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण. Int J Contemp Res Multidiscip. 2025;4(1):316-321.

Access this Article Online

www.multiarticlesjournal.com

कुंजी शब्द: प्रसवोत्तर अवसाद, मातृ मानसिक स्वास्थ्य, ग्रामीण महिलाएँ, समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण, संरचनात्मक-क्रियात्मक सिद्धांत, नारीवादी सिद्धांत, लेबलिंग सिद्धांत, जुड़ाव सिद्धांत।

© 2025 प्रो आयुषी गुप्ता, आरती कुमारी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

परिचय

प्रसवोत्तर काल किसी भी महिला के जीवन का अत्यंत संवेदनशील एवं परिवर्तनशील चरण होता है। इस अवधि में महिला के शरीर, मन तथा सामाजिक जीवन में व्यापक परिवर्तन होते हैं। यद्यपि मातृत्व को सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से सुखद अनुभव माना जाता है, किंतु अनेक महिलाओं के लिए यह मानसिक तनाव, भावनात्मक अस्थिरता तथा सामाजिक दबाव का कारण भी बन जाता है। इसी संदर्भ में प्रसवोत्तर अवसाद एक गंभीर मानसिक स्वास्थ्य समस्या के रूप में उभरता है। यह केवल अस्थायी उदासी (क्षणिक दुःख) नहीं है, बल्कि एक चिकित्सकीय रूप से मान्यता प्राप्त अवसादग्रस्त अवस्था है, जो कई सप्ताह अथवा महीनों तक बनी रह सकती है। प्रसवोत्तर अवसाद के प्रमुख लक्षणों में लगातार उदासी, निराशा, अत्यधिक चिंता, थकान, अनिद्रा, भूख में कमी, दैनिक कार्यों में अरुचि, आत्मविश्वास की कमी तथा नवजात शिशु के साथ भावनात्मक जुड़ाव स्थापित करने में कठिनाई शामिल हैं। यदि इसका समय पर उपचार न किया जाए तो इसका प्रभाव केवल माता तक सीमित नहीं रहता, बल्कि शिशु के शारीरिक, मानसिक एवं संज्ञानात्मक विकास तथा सम्पूर्ण परिवार के स्वास्थ्य एवं सामाजिक संबंधों पर भी पड़ता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन तथा अमेरिकन साइकियाट्रिक एसोसिएशन के अनुसार प्रसवोत्तर अवसाद मातृ मानसिक स्वास्थ्य की सबसे सामान्य समस्याओं में से एक है। इसलिए इसे केवल व्यक्तिगत स्वास्थ्य समस्या न मानकर सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा सामाजिक विकास के महत्वपूर्ण विषय के रूप में देखा जा रहा है (World Health Organization-2022; American Psychiatric Association, 2022) । विश्व स्तर पर प्रसवोत्तर अवसाद महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य की सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार निम्न एवं मध्यम आय वाले देशों में लगभग प्रत्येक पाँच में से एक महिला गर्भावस्था अथवा प्रसव के पश्चात किसी न किसी सामान्य मानसिक विकार से प्रभावित होती है, जिनमें अवसाद सर्वाधिक सामान्य है। यह समस्या केवल व्यक्तिगत मानसिक स्वास्थ्य तक सीमित नहीं रहती, बल्कि स्तनपान, शिशु के पोषण, भावनात्मक विकास, संज्ञानात्मक क्षमता तथा पारिवारिक संबंधों को भी प्रभावित करती है। वर्तमान समय में मातृ मानसिक स्वास्थ्य को सतत विकास लक्ष्यों (Sustainable Development Goals) विशेषकर लक्ष्य-3 तथा लक्ष्य-5 से जोड़ा गया है। वैश्विक अध्ययनों के अनुसार प्रसवोत्तर अवसाद की व्यापकता लगभग 17-20 प्रतिशत के बीच पाई गई है। कोविड-19 महामारी के दौरान सामाजिक अलगाव, आर्थिक असुरक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओं में व्यवधान के कारण इसकी व्यापकता में और अधिक वृद्धि हुई WHO, 2022; Wang et al-2021; Yan et al, 2020)।

भारत में मातृ स्वास्थ्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। संस्थागत प्रसव, प्रसवपूर्व देखभाल तथा मातृ मृत्यु दर में कमी लाने हेतु राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन तथा जननी सुरक्षा योजना जैसी योजनाएँ सफल रही हैं। इसके बावजूद मातृ मानसिक स्वास्थ्य विशेषकर प्रसवोत्तर अवसाद को अभी भी स्वास्थ्य सेवाओं में अपेक्षित प्राथमिकता प्राप्त नहीं हुई है। विभिन्न अध्ययनों के अनुसार भारत में प्रसवोत्तर अवसाद की औसत व्यापकता लगभग 22 प्रतिशत है, जबकि विभिन्न राज्यों में यह 11 से 40 प्रतिशत तक पाई गई है। ग्रामीण क्षेत्रों में घरेलू हिंसा, पति एवं परिवार का अपर्याप्त सहयोग, आर्थिक कठिनाइयाँ, पुत्र वरीयता, मातृ एनीमिया, अनियोजित गर्भधारण तथा महिलाओं की सीमित निर्णय क्षमता इसके प्रमुख कारण हैं। यद्यपि डमदजंस भ्मंसजीबंतम ।बज, 2017, छंजपवदंस डमदजंस भ्मंसजी च्तवहतंउउम ;छडभ्द्ध तथा क्पेजतपबज डमदजंस भ्मंसजी च्तवहतंउउम ;क्डभ्द्ध लागू हैं, फिर भी प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं में प्रसवोत्तर अवसाद की नियमित जाँच एवं परामर्श व्यवस्था अभी भी पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हो सकी है। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में आशा एवं एएनएम कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण मुख्यतः शारीरिक स्वास्थ्य तक सीमित रहता है Upadhyay et al- 2017, Dadhwal et al- 2023; Patel et al-2002।

समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार प्रसवोत्तर अवसाद केवल हार्मोनल परिवर्तन या व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक समस्या नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संरचना, पारिवारिक संबंधों, आर्थिक परिस्थितियों तथा सांस्कृतिक मूल्यों से गहराई से जुड़ा हुआ है। ग्रामीण भारत में महिलाओं को विवाह के पश्चात अनेक भूमिकाएँ निभानी पड़ती हैं। उनसे एक आदर्श माँ, पत्नी, बहू तथा गृहिणी होने की अपेक्षा की जाती है। परिवार की आवश्यकताओं को स्वयं से ऊपर रखने की सामाजिक अपेक्षाएँ महिलाओं पर अतिरिक्त मानसिक दबाव उत्पन्न करती हैं। घरेलू हिंसा, आर्थिक निर्भरता, स्वास्थ्य सेवाओं की कमी तथा सामाजिक समर्थन का अभाव इस मानसिक तनाव को और अधिक बढ़ा देता है। इस प्रकार प्रसवोत्तर अवसाद सामाजिक असमानताओं, लैंगिक भेदभाव तथा कमजोर सामाजिक समर्थन का परिणाम माना जा सकता है। इसलिए इसके समाधान के लिए केवल चिकित्सकीय उपचार पर्याप्त नहीं है, बल्कि सामाजिक सुधार एवं सामुदायिक सहयोग भी आवश्यक हैं (WHO, 2022; Patel et al- 2002)

संरचनात्मक क्रियात्मक सिद्धांत

समाजशास्त्र में इस समस्या को समझने के लिए संरचनात्मक-कार्यात्मक अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। इस सिद्धांत के प्रमुख प्रवर्तकों में एमाइल दुर्खीम का विशेष स्थान है। दुर्खीम ने समाज को एक संगठित व्यवस्था के रूप में देखा, जिसमें प्रत्येक सामाजिक संस्था जैसे परिवार, धर्म, शिक्षा और विवाह आदि महत्वपूर्ण कार्य करती है। उनके अनुसार समाज में संतुलन और व्यवस्था बनाए रखने के लिए सामाजिक संस्थाओं का सुचारु रूप से कार्य करना आवश्यक है। जब सामाजिक संबंध कमजोर होते हैं या सामाजिक समर्थन की कमी होती है, तब व्यक्ति मानसिक तनाव और अलगाव का अनुभव करता है। प्रसवोत्तर अवसाद को समझने में दुर्खीम की अवधारणाएँ जैसे सामाजिक एकता, सामूहिक चेतना, अराजकता तथा सामाजिक नियंत्रण अत्यंत उपयोगी हैं (Durkheim, 1897/1951; Durkheim, 1912/1995; Ritzer, 2021) । संरचनात्मक-कार्यात्मक सिद्धांत समाज को एक जीवित शरीर के समान मानता है, जहाँ समाज की प्रत्येक संस्था का एक विशिष्ट कार्य होता है। जिस प्रकार शरीर के सभी अंग मिलकर शरीर को स्वस्थ बनाए रखते हैं, उसी प्रकार सामाजिक संस्थाएँ मिलकर समाज में संतुलन और स्थिरता बनाए रखती हैं। यदि किसी संस्था का कार्य बाधित होता है, तो उसका प्रभाव पूरे समाज पर पड़ता है। इस सिद्धांत के अनुसार परिवार समाज की सबसे महत्वपूर्ण संस्था है, क्योंकि यह समाजीकरण, भावनात्मक सहयोग, सुरक्षा तथा सांस्कृतिक मूल्यों के हस्तांतरण का कार्य करता है। प्रसवोत्तर अवसाद के संदर्भ में परिवार की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है।

© 2025 प्रो आयुषी गुप्ता, आरती कुमारी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

दुर्खीम के संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण के आधार पर प्रसवोत्तर अवसाद की समस्या का समाधान सामाजिक समर्थन और सामाजिक एकीकरण को मजबूत बनाकर किया जा सकता है। परिवार, समुदाय, स्वास्थ्य संस्थाओं तथा सरकार को महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य के प्रति संवेदनशील होना चाहिए। महिलाओं को भावनात्मक सहयोग, मानसिक परामर्श, मातृत्व अवकाश तथा सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना आवश्यक है। पति और परिवार के अन्य सदस्यों की सक्रिय भागीदारी महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बना सकती है। समाज में मातृत्व से जुड़ी अवास्तविक अपेक्षाओं को कम करने तथा महिलाओं की मानसिक समस्याओं को स्वीकार करने की आवश्यकता है। प्रसवोत्तर अवसाद केवल एक व्यक्तिगत या चिकित्सकीय समस्या नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संरचना, पारिवारिक संबंधों, सामाजिक समर्थन तथा सांस्कृतिक मूल्यों से जुड़ी हुई समस्या है। संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण इस समस्या को समझने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दुर्खीम की सामाजिक एकता, सामूहिक चेतना, अराजकता तथा सामाजिक नियंत्रण जैसी अवधारणाएँ यह स्पष्ट करती हैं कि महिला का मानसिक स्वास्थ्य समाज और परिवार से गहराई से जुड़ा हुआ है। यदि महिला को पर्याप्त सामाजिक सहयोग, भावनात्मक समर्थन और सामाजिक सुरक्षा प्राप्त होती है, तो वह मातृत्व की चुनौतियों का बेहतर ढंग से सामना कर सकती है। लेकिन सामाजिक अलगाव, पारिवारिक तनाव और सामाजिक अपेक्षाओं का दबाव प्रसवोत्तर अवसाद को बढ़ा सकता है। इसलिए प्रसवोत्तर अवसाद के समाधान के लिए केवल चिकित्सकीय उपचार पर्याप्त नहीं है, बल्कि समाज और सामाजिक संस्थाओं को भी अपनी जिम्मेदारी निभानी होगी। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य को व्यापक सामाजिक संदर्भ में समझने और प्रभावी समाधान विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

नारीवादी सिद्धांत

नारीवादी दृष्टिकोण से देखा जाए तो प्रसवोत्तर अवसाद केवल व्यक्तिगत या जैविक समस्या नहीं है, बल्कि यह लैंगिक असमानता और सामाजिक संरचनाओं का परिणाम भी है। कई समाजों में बच्चे की देखभाल और घरेलू कार्य का अधिकांश बोझ महिलाओं पर ही होता है, जबकि पुरुषों की भागीदारी सीमित रहती है, जिससे महिलाओं में सामाजिक अलगाव और मानसिक दबाव बढ़ता है। इसके साथ ही कार्यस्थल पर पर्याप्त मातृत्व अवकाश, मानसिक स्वास्थ्य सहायता और सामाजिक समर्थन की कमी भी इस स्थिति को गंभीर बनाती है। नारीवादी सिद्धांत यह तर्क देता है कि मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं को केवल चिकित्सा दृष्टि से नहीं, बल्कि सामाजिक दृष्टि से भी समझना आवश्यक है, क्योंकि ये समस्याएँ समाज की लिंग आधारित संरचनाओं से गहराई से जुड़ी होती हैं। इसलिए प्रसवोत्तर अवसाद के समाधान के लिए न केवल चिकित्सा उपचार बल्कि सामाजिक परिवर्तन, समान देखभाल और सहायक नीतियों की भी आवश्यकता होती है।

अतः यह स्पष्ट है कि नारीवाद में प्रसवोत्तर अवसाद एक अत्यंत महत्वपूर्ण मुद्दा है, जिसे समाज को गंभीरता से लेना चाहिए। महिलाओं का इससे चुनौतीपूर्ण और विपरीत अनुभव होता है। जिसमें वे सिर्फ षारीरिक परिवर्तनों का सामना ही नहीं करती अपितु मानसिक और भावनात्मक परिवर्तनों से भी गुज़रती है। प्रसवोत्तर अवसाद को अनुभव करने वाली महिलाओं के लिए सहायता और समर्थन की आवष्यकता होती हैं, ताकि वे अपने भावनात्मक स्वास्थ्य का सही से ध्यान रख सके और मुष्किल समय में सहायता प्राप्त कर सकें। सामाजिक जागरूकता और षिक्षा के माध्यम से इस मुद्दे पर चर्चा को बढ़ावा देना भी बहुत महत्वपूर्ण है, ताकि लोंगो को इस बारे में सही जानकारी मिल सकें और समर्थन प्रदान कर सकें (मॉथनर, 1993)। सरचं नावादी दृष्टिकोण के अनुसार मानसिक बीमारी एक सामाजिक पैटर्न पर आधारित होती हैं। इसका तात्पर्य हैं कि समाज में मौजूद विभिन्न सांस्कृतिक और भौतिक कारक जैसे आर्थिक असमानता, सामाजिक दवाब मानसिक स्वास्थ्य पर असर डालते हैं। ये कारक दर्षाते हैं कि, मानसिक बीमारी केवल जैविक, व्यक्तिगत कारणों से नहीं होती बल्कि समाज की संरचना से भी प्रभावित होती हैं (रोजर्स, 2014)।

जुड़ाव सिद्धांत

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखा जाए तो जुड़ाव सिद्धांत के अनुसार प्रारंभिक माँ शिशु संबंध बच्चे के सामाजिक और भावनात्मक विकास की नींव होता है, लेकिन प्रसवोत्तर अवसाद इस प्रक्रिया को बाधित कर सकता है। जब माँ अवसाद से ग्रस्त होती है, तो वह बच्चे के संकेतों को सही ढंग से समझ नहीं पाती और उसकी आवश्यकताओं के प्रति पर्याप्त प्रतिक्रिया नहीं दे पाती, जिससे शिशु में असुरक्षित जुड़ाव विकसित होने की संभावना बढ़ जाती है। यह स्थिति आगे चलकर बच्चे के विश्वास, संबंध निर्माण और सामाजिक व्यवहार को प्रभावित कर सकती है। इसके अतिरिक्त, समाजशास्त्र यह भी बताता है कि प्रसवोत्तर अवसाद केवल एक व्यक्तिगत मानसिक समस्या नहीं है, बल्कि इसके पीछे सामाजिक कारण भी महत्वपूर्ण होते हैं, जैसे परिवार से समर्थन की कमी, आर्थिक तनाव, सामाजिक अपेक्षाएँ और मातृत्व से जुड़ी भूमिकाओं का दबाव। यदि समय पर इस स्थिति की पहचान और उपचार नहीं किया जाए तो यह माँ और बच्चे दोनों के संबंधों पर दीर्घकालिक नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि प्रसवोत्तर अवसाद को एक सामाजिक समस्या के रूप में समझा जाए और इसके लिए चिकित्सकीय, पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर सहयोग प्रदान किया जाए। समाजशास्त्र में जुड़ाव सिद्धांत के आधार पर प्रसवोत्तर अवसाद पर अनेक अध्ययन किए गए हैं, जिनमें यह समझने का प्रयास किया गया है कि माँ की मानसिक स्थिति शिशु के साथ उसके जुड़ाव और परिवारिक संरचना को कैसे प्रभावित करती है। बोल्बी के जुड़ाव सिद्धांत के अनुसार प्रारंभिक माँ शिशु संबंध बच्चे के भावनात्मक और सामाजिक विकास की नींव होता है, और इस संबंध में किसी भी प्रकार की बाधा आगे चलकर असुरक्षित जुड़ाव का कारण बन सकती है। इसी आधार पर शोधकर्ताओं ने प्रसवोत्तर अवसाद को केवल एक मानसिक विकार नहीं, बल्कि एक सामाजिक समस्या के रूप में अध्ययन किया है, जो परिवार और समाज की संरचना से भी जुड़ी होती है (Bowlby, 1969/1982; Ainsworth et al., 1978; Beck, 1995; McMahon et al., 2006)A

लेबलिंग सिद्धांत

लेबलिंग सिद्धांत को समाजशास्त्र में प्रसवोत्तर अवसाद को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण के रूप में देखा जा सकता है। प्रसवोत्तर अवसाद के संदर्भ में यह सिद्धांत समझाता है कि कई बार महिलाओं की मानसिक स्थिति को समाज "कमज़ोरी", "अस्थिरता" या "असामान्यता" के रूप में लेबल कर देता है, जिससे उनकी स्थिति और

© 2025 प्रो आयुषी गुप्ता, आरती कुमारी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

अधिक जटिल हो जाती है। जब प्रसव के बाद किसी महिला को लगातार यह महसूस कराया जाता है कि वह एक "आदर्श माँ" नहीं है या वह अपनी जिम्मेदारियों को ठीक से नहीं निभा पा रही है, तो वह धीरे-धीरे स्वयं को उसी नकारात्मक पहचान के रूप में देखने लगती है। यही प्रक्रिया उसके मानसिक तनाव और अवसाद को बढ़ा सकती है। प्रसवोत्तर अवसाद के संदर्भ में इसका अर्थ यह है कि जब समाज किसी महिला के भावनात्मक बदलाव, उदासी या थकान को सामान्य जैविक और मानसिक प्रक्रिया के बजाय "समस्या" या "कमजोरी" के रूप में परिभाषित करता है, तो वह महिला सामाजिक रूप से अलग-थलग महसूस करने लगती है ;ठमबामतए 1963य स्मउमतजए 1951द्ध। इसी प्रकार गॉफमैन (1963) ने अपनी पुस्तक "जपहउं" में बताया कि समाज द्वारा लगाया गया "कलंक" व्यक्ति की पहचान को प्रभावित करता है। प्रसवोत्तर अवसाद से पीड़ित महिलाओं को यदि समाज "कमज़ोर माँ" या "असफल महिला" जैसे लेबल देता है, तो इससे उनका आत्मसम्मान कम हो सकता है और वे अपनी समस्या को छिपाने लगती हैं, जिससे उपचार में देरी हो सकती है।

लेबलिंग सिद्धांत केवल बेकर या लेमर्ट तक सीमित नहीं है, बल्कि एरिक्सन, स्पेक्टर और किट्स्यूस, शेफ़, बर्जर और लकमैन (1966) और भारतीय समाजशास्त्रियों के कार्यों के माध्यम से इसे और व्यापक रूप में समझा जा सकता है। प्रसवोत्तर अवसाद के संदर्भ में ये अध्ययन यह बताते हैं कि मानसिक स्वास्थ्य केवल जैविक या व्यक्तिगत समस्या नहीं है, बल्कि यह सामाजिक परिभाषा, लेबलिंग और सांस्कृतिक अर्थों से गहराई से जुड़ा हुआ है। भारतीय परिवार संरचना, विशेषकर संयुक्त और एकल परिवारों के संक्रमण के दौरान, यह समस्या और अधिक स्पष्ट होती है। पहले संयुक्त परिवारों में महिलाओं को अधिक सामाजिक समर्थन मिलता था, जिससे मानसिक दबाव कम होता था, लेकिन आज के शहरी एकल परिवारों में सामाजिक समर्थन की कमी और अपेक्षाओं का दबाव बढ़ गया है। इस स्थिति में लेबलिंग सिद्धांत यह समझाने में मदद करता है कि कैसे सामाजिक प्रतिक्रिया (जैसे आलोचना, तुलना या उपेक्षा) मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। इस प्रकार, लेबलिंग सिद्धांत यह स्पष्ट करता है कि प्रसवोत्तर अवसाद केवल चिकित्सा या जैविक समस्या नहीं है, बल्कि यह सामाजिक निर्माण और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। यदि समाज और परिवार महिलाओं को समझ, समर्थन और स्वीकार्यता प्रदान करें, तो नकारात्मक लेबलिंग को कम किया जा सकता है और मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाया जा सकता है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि प्रसवोत्तर अवसाद केवल एक चिकित्सकीय अथवा मनोवैज्ञानिक समस्या नहीं है, बल्कि यह एक बहुआयामी सामाजिक घटना है, जिसकी जड़ें समाज की संरचना, सांस्कृतिक मान्यताओं, लैंगिक संबंधों, पारिवारिक व्यवस्था तथा आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में निहित हैं। यद्यपि प्रसव के पश्चात होने वाले हार्मोनल परिवर्तन एवं जैविक कारक महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं, तथापि समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण यह स्थापित करता है कि सामाजिक परिवेश, पारिवारिक सहयोग, लैंगिक असमानता, आर्थिक संसाधनों की उपलब्धता तथा सांस्कृतिक अपेक्षाएँ महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य को समान रूप से प्रभावित करती हैं। इसलिए प्रसवोत्तर अवसाद को केवल चिकित्सा विज्ञान की सीमा में नहीं रखा जा सकता, बल्कि इसे समाजशास्त्र, महिला अध्ययन, चिकित्सा समाजशास्त्र तथा ग्रामीण समाजशास्त्र के अंतःविषयक अध्ययन के रूप में समझना अधिक उपयुक्त है।

संरचनात्मक-क्रियात्मक सिद्धांत यह स्पष्ट करता है कि परिवार समाज की मूलभूत संस्था है, जिसका प्रमुख कार्य भावनात्मक सुरक्षा, सामाजिक सहयोग, बच्चों का समाजीकरण तथा सामाजिक स्थिरता बनाए रखना है। जब परिवार अपने इन दायित्वों का प्रभावी ढंग से निर्वहन नहीं कर पाता, तब सामाजिक संतुलन (Social Equilibrium) में व्यवधान उत्पन्न होता है, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव नई माँ के मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। भावनात्मक सहयोग की कमी, घरेलू कार्यों का असमान वितरण, सामाजिक अलगाव तथा संस्थागत सहायता का अभाव महिला को प्रसवोत्तर अवसाद की ओर अग्रसर करता है। इस प्रकार यह सिद्धांत मातृ मानसिक स्वास्थ्य को परिवार एवं अन्य सामाजिक संस्थाओं की कार्यक्षमता का महत्वपूर्ण संकेतक मानता है।

दूसरी ओर, नारीवादी एवं जेंडर सिद्धांत यह प्रतिपादित करते हैं कि प्रसवोत्तर अवसाद की समस्या को समझने के लिए पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था, लैंगिक असमानता तथा शक्ति संबंधों का विश्लेषण आवश्यक है। भारतीय समाज, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, महिलाओं से एक आदर्श माँ, पत्नी एवं बहू की भूमिका निर्वहन करने की अपेक्षा की जाती है, जबकि उन्हें निर्णय लेने की स्वतंत्रता, आर्थिक संसाधनों पर नियंत्रण तथा सामाजिक सहयोग अपेक्षाकृत कम प्राप्त होता है। घरेलू हिंसा, पुत्र वरीयता, अवैतनिक घरेलू श्रम, सीमित प्रजनन अधिकार तथा महिलाओं की आर्थिक निर्भरता उनके मानसिक तनाव को बढ़ाते हैं। परिणामस्वरूप प्रसवोत्तर अवसाद केवल व्यक्तिगत मानसिक कमजोरी नहीं, बल्कि सामाजिक एवं लैंगिक असमानताओं का प्रतिफल बन जाता है। इसलिए मातृ मानसिक स्वास्थ्य में सुधार हेतु महिलाओं के सशक्तिकरण, समान अवसर, साझा पारिवारिक उत्तरदायित्व तथा लैंगिक न्याय को बढ़ावा देना आवश्यक है।

जुड़ाव सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि माँ और शिशु के मध्य प्रारम्भिक भावनात्मक संबंध शिशु के व्यक्तित्व, सामाजिक व्यवहार तथा भावनात्मक विकास की आधारशिला होते हैं। यदि माँ प्रसवोत्तर अवसाद से पीड़ित है, तो वह शिशु की आवश्यकताओं के प्रति अपेक्षित संवेदनशीलता प्रदर्शित नहीं कर पाती, जिससे असुरक्षित जुड़ाव विकसित होने की संभावना बढ़ जाती है। इसका प्रभाव केवल शिशु के वर्तमान विकास पर ही नहीं, बल्कि उसके भविष्य के सामाजिक संबंधों, आत्मविश्वास तथा मानसिक स्वास्थ्य पर भी पड़ सकता है। अतः मातृ मानसिक स्वास्थ्य को बाल विकास एवं परिवार कल्याण की व्यापक प्रक्रिया से जोड़कर देखना आवश्यक है।

लेबलिंग सिद्धांत यह दर्शाता है कि समाज द्वारा लगाए गए सामाजिक लेबल एवं मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े कलंक प्रसवोत्तर अवसाद की गंभीरता को और बढ़ा देते हैं। अनेक समाजों में मातृत्व को पूर्णतः सुखद एवं संतोषजनक अवस्था के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। ऐसी स्थिति में यदि कोई महिला प्रसव के बाद उदासी, चिंता अथवा भावनात्मक अस्थिरता अनुभव करती है, तो उसे "कमजोर माँ", "अयोग्य महिला" अथवा "मानसिक रूप से अस्थिर" जैसे नकारात्मक लेबल दिए जाते हैं। इस सामाजिक कलंक के कारण महिलाएँ अपनी मानसिक समस्याओं को छिपाने लगती हैं तथा समय पर चिकित्सकीय सहायता प्राप्त नहीं कर पातीं। परिणामस्वरूप उनकी समस्या और अधिक जटिल हो जाती है। अतः मानसिक स्वास्थ्य के प्रति सामाजिक जागरूकता बढ़ाना,

© 2025 प्रो आयुषी गुप्ता, आरती कुमारी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

कलंक को कम करना तथा सहायक सामाजिक वातावरण का निर्माण करना अत्यंत आवश्यक है।

इन सभी समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों का समेकित विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि प्रसवोत्तर अवसाद जैविक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक कारकों की पारस्परिक अंतःक्रिया का परिणाम है। यह समस्या केवल महिला के व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित नहीं करती, बल्कि शिशु के विकास, पारिवारिक संबंधों, सामाजिक एकता, स्वास्थ्य व्यवस्था तथा व्यापक सामाजिक विकास पर भी दीर्घकालिक प्रभाव डालती है। इसलिए इसके समाधान हेतु बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है, जिसमें चिकित्सा उपचार के साथ-साथ सामाजिक समर्थन, मानसिक स्वास्थ्य परामर्श, परिवार की सक्रिय भागीदारी, सामुदायिक सहयोग, लैंगिक समानता, आर्थिक सुरक्षा तथा प्रभावी सार्वजनिक नीतियों को समान महत्व दिया जाए।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से प्रसवोत्तर अवसाद अध्ययन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र है, क्योंकि यह स्वास्थ्य एवं समाज के पारस्परिक संबंधों को समझने का अवसर प्रदान करता है। इसके माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि मानसिक स्वास्थ्य केवल व्यक्ति की जैविक अवस्था का परिणाम नहीं है, बल्कि वह सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक मान्यताओं, आर्थिक संसाधनों, सामाजिक संस्थाओं तथा शक्ति संबंधों से गहराई से प्रभावित होता है। विशेष रूप से ग्रामीण भारत के संदर्भ में यह अध्ययन महिलाओं की वास्तविक सामाजिक परिस्थितियों, लैंगिक असमानताओं तथा स्वास्थ्य सेवाओं की सीमाओं को उजागर करता है।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रसवोत्तर अवसाद को केवल एक मानसिक रोग के रूप में नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक समस्या के रूप में समझना चाहिए। मातृ मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ बनाने के लिए स्वास्थ्य सेवाओं के साथ-साथ सामाजिक न्याय, महिला सशक्तिकरण, गुणवत्तापूर्ण मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार, सामुदायिक जागरूकता, मानसिक स्वास्थ्य की नियमित जाँच तथा परिवार-आधारित सहयोग प्रणाली को मजबूत करना अनिवार्य है। समाजशास्त्र इस दिशा में एक व्यापक विश्लेषणात्मक ढाँचा प्रदान करता है, जो प्रसवोत्तर अवसाद के सामाजिक कारणों की पहचान करने, प्रभावी हस्तक्षेप विकसित करने तथा ऐसी नीतियों के निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकता है जो महिलाओं, बच्चों और समाजकृतीनों के समग्र कल्याण को सुनिश्चित करें।

संदर्भ सूची

1. American Psychiatric Association. Diagnostic and statistical manual of mental disorders (DSM-5-TR). 5th ed., text rev. Washington (DC): American Psychiatric Association Publishing; 2022.
2. Becker HS. Outsiders: Studies in the sociology of deviance. New York: Free Press; 1963.
3. Biddle BJ. Recent developments in role theory. Annu Rev Sociol. 1986; 12:67-92.
4. doi:10.1146/annurev.so.12.080186.000435.
5. Blumer H. Symbolic interactionism: Perspective and method. Berkeley: University of California Press; 1969.
6. Chandran M, Tharyan P, Muliyil J, Abraham S. Post-partum depression in a cohort of women from a rural area of Tamil Nadu, India: Incidence and risk factors. Br J Psychiatry. 2002;181(6):499-504. doi:10.1192/bjp.181.6.499.
7. Chodorow N. The reproduction of mothering: Psychoanalysis and the sociology of gender. Berkeley: University of California Press; 1978.
8. Connell RW. Gender and power: Society, the person and sexual politics. Stanford (CA): Stanford University Press; 1987.
9. Dadhwal V, Sagar R, Bhattacharya D, Kant S, Misra P, Choudhary V, et al. Prevalence of postpartum depression and anxiety among women in rural India: Risk factors and psychosocial correlates. Indian J Med Res. 2023;158(4):407-416. doi: 10.4103/ijmr.IJMR_3489_20.
10. Dahrendorf R. Class and class conflict in industrial society. Stanford (CA): Stanford University Press; 1959.
11. Durkheim E. The elementary forms of religious life. London: Allen & Unwin; 1915.
12. Durkheim E. Suicide: A study in sociology. Glencoe (IL): Free Press; 1951.
13. Durkheim E. The division of labour in society. New York: Free Press; 1964.
14. Goffman E. Stigma: Notes on the management of spoiled identity. Englewood Cliffs (NJ): Prentice Hall; 1963.
15. Field T. Postpartum depression effects on early interactions and development. Infant Behav Dev. 2010.
16. Tannenbaum F. Crime and the community. New York: Columbia University Press; 1938.
17. Friedan B. The feminine mystique. New York: W.W. Norton & Company; 1963.
18. George LK. Sociological perspectives on mental health. In: Horwitz AV, Scheid TL, editors. A handbook for the study of mental health. Cambridge: Cambridge University Press; 1993. p.33-45.
19. Goode WJ, Hatt PK. Methods in social research. New York: McGraw-Hill; 1952.
20. Government of India. Mental Healthcare Act, 2017. New Delhi: Ministry of Law and Justice; 2017.
21. Hochschild AR. The second shift: Working parents and the revolution at home. New York: Viking; 1989.
22. Lemert EM. Social pathology. New York: McGraw-Hill; 1951.
23. Marx K, Engels F. The German ideology. Arthur CJ, editor. New York: International Publishers; 1970. Originally published in 1848.
24. Merton RK. Social theory and social structure. Enlarged ed. New York: Free Press; 1968.
25. Mills CW. The sociological imagination. New York: Oxford University Press; 1959.
26. Ministry of Health and Family Welfare. National Health Mission: Framework for implementation. New Delhi: Government of India; 2023.
27. Nagandla K, Nalliah S, Yin LK, Majeed ZA, Ismail M, Zubaidah S. Postnatal depression among women availing maternal health services in a rural hospital in South India. Pak J Med Sci. 2015;31(2):408-413.
28. Oakley A. The sociology of housework. New York: Pantheon Books; 1974.

© 2025 प्रो आयुषी गुप्ता, आरती कुमारी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

29. O'Hara MW, Wisner KL. Perinatal mental illness: Definition, description and aetiology. Best Pract Res Clin Obstet Gynaecol. 2014;28(1):3-12. doi:
30. 10.1016/j.bpobgyn.2013.09.002.
31. Patel V, Rodrigues M, DeSouza N. Gender, poverty, and postnatal depression: A study of mothers in Goa, India. Am J Psychiatry. 2002;159(1):43-47. doi:
32. 10.1176/appi.ajp.159.1.43.
33. Shorey S, Chee CYI, Ng ED, Chan YH, Tam WWS, Chong YS. Prevalence and incidence of postpartum depression among healthy mothers: A systematic review and meta-analysis. J Psychiatr Res. 2018; 104:235-248. doi: 10.1016/j.jpsychires.2018.08.001.
34. Upadhyay RP, Chowdhury R, Salehi A, Sarkar K, Singh SK, Sinha B, et al. Postpartum depression in India: A systematic review and meta-analysis. Bull World Health Organ. 2017;95(10):706-717C. doi:10.2471/BLT.17.192237.
35. Wang Z, Liu J, Shuai H, Cai Z, Fu X, Liu Y, et al. Mapping global prevalence of depression among postpartum women. Transl Psychiatry. 2021; 11:543. doi:10.1038/s41398-021-01663-6.
36. World Health Organization. A conceptual framework for action on the social determinants of health. Geneva: World Health Organization; 2010.
37. World Health Organization. World mental health report: Transforming mental health for all. Geneva: World Health Organization; 2022.
38. Yan H, Ding Y, Guo W. Mental health of pregnant and postpartum women during the coronavirus disease 2019 pandemic: A systematic review and meta-analysis. Front Psychol. 2020; 11:617001. doi:10.3389/fpsyg.2020.617001.

Creative Commons (CC) License

This article is an open-access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.

© 2025 प्रो आयुषी गुप्ता, आरती कुमारी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/